[2015] 3 एस. सी. आर. 526

तुकाराम दन्यानेश्वर पाटिल

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और अन्य

(2015 की आपराधिक अपील संख्या 442)

13 मार्च, 2015

[वी. गोपाल गौड़ा और सी. नागप्पन, जे. जे.]

दंड संहिता, 1860: एस.302 आरडब्ल्यु एस 34; s.304 भाग II आर/डब्ल्यूएस 34- पीड़ित-मृतक और अभियुक्त व्यक्तियों के बीच विवाद खेत की सीमा के पार-दुर्भाग्यपूर्ण दिन, ए-1 मृतक के बाएं कान पर दरांती से हमला किया और ए-2 और ए-3 ने उसके सिर पर डंडों से हमला किया और मुँह-जब पीडब्लू-1, मृतक के भाई ने हस्तक्षेप किया, ए-1 से ए-3 ने उसके साथ मारपीट की उसके सिर और मुंह पर लाठी के साधन- जब पीडब्लू-1, मृतक के भाई ने हस्तक्षेप किया, ए-1 से ए-3 ने उसके हाथ और सिर पर लाठी से हमला किया- बाद में मृतक ने दम तोड़ दिया- निचली अदालत ने अभियुक्त को धारा 302 r/w 34 में दोषी ठहराया उच्च न्यायालय ने संशोधन किया को विश्वास। 304 भाग II आर/डब्ल्यू एस 34

और आरोपी को पीडब्लू1 और उसके परिवार के सदस्यों को राशि 105000 का भुगतान करने का निर्देश दिया- **यह माना कि**ः रिकॉर्ड पर साक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए, अभियुक्त को अपराध अंतर्गत धारा 304 भाग द्वितीय में दोषसिद्ध पाए जाने के आदेश में कोइ त्रुटि नहीं थी- हालांकि, दी गई सजा अनुचित थी -संख्या 2 से 4 ने केवल ग्यारह महीने के कारावास की सजा काटी- उच्च न्यायालय ने धारा 304 भाग द्वितीय में दोषसिद्धि में बदलाव करते हुए पहले से भुगती हुईकारावास की सजा में बदल दिया गया और प्रत्येक को शिकायतकर्ता को 35000/- रुपये की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया- मामले की तथ्यों एवं परिस्थितियों से अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त के अपराध अंतर्गत धारा 304 भाग-II में साबित किया गया जो निस्संदेह अपराध के अनुपात में एक गंभीर अपराध की सजा दर्शित करती है- ग्यारह महीने की सजा बहुत कम थी- प्रत्येक आरोपी पर पांच साल का कठोर कारावास अधिरोपित करने से न्याय के उद्देश्य की पूर्ति होगी।

न्यायालय ने अपीलों का निस्तारण करते हुए अभिनिर्धारित कि:

1. साक्ष्य का विश्लेषण करने के बाद उच्च न्यायालय ने माना कि झगड़ा हुआ था जिसके कारण यह घटना हुई और आरोपियों को चोटें भी आईं और उन्हें हत्या के अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता और चूंकि उन्हें पता था कि उनके कृत्य से मौत होने की संभावना है, इसलिए

उन्हें धारा 304 भाग- II आईपीसी के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। उच्च न्यायालय के उक्त निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं थी। [पैरा 9] [532-सी-डी]

2. प्रत्यर्थी 2 से 4/अभियुक्त संख्या 1 से 3 को 29.10.1997 को गिरफ्तार किया गया था और उन्हें 28.9.1998 को जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया गया था और उन्होंने केवल ग्यारह महीने की कारावास की सजा काटी है। उच्च न्यायालय ने आईपीसी की धारा 304 भाग-2 में दोषसिद्धि को परिवर्तित करते हुए, सजा को पहले से भुगती गई कारावास की अवधि में बदल दिया और प्रत्येक शिकायतकर्ता को 35000/- रुपये की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया। राज्य और शिकायतकर्ता दोनों ने सजा के इस बदलाव को चुनौती दी है। अपराध के मामलों में सजा सुनाना एक महत्वपूर्ण कार्य है। आपराधिक कानून का एक प्रमुख उद्देश्य अपराध की प्रकृति और गंभीरता तथा अपराध करने के तरीके के अनुरूप उचित, पर्याप्त, न्यायसंगत और आनुपातिक सजा देना है। [पैरा 10,11] [532- ई-एच; 533-ए]

यू. पी. राज्य बनाम श्री किशन **(2005) 10 एससीसी 420: (2004) 6 पूरक। एस. सी. आर. 530-पर निर्भर।**

3. मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ जो अभियोजन पक्ष द्वारा आईपीसी की धारा 304 भाग- II के तहत आरोपी के अपराध को साबित

करने में साबित हुई हैं, निस्संदेह एक घृणित गंभीर अपराध को दर्शाती हैं, जिसके लिए अपराध के अनुपात में सजा की आवश्यकता है। उक्त दोषसिद्धि के लिए उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को दी गई ग्यारह महीने की सजा बहुत कम और पर्याप्त नहीं है और हमारे विचार में यह न्याय का मखौल होगा। यह सच है कि प्रत्येक अपीलकर्ता को 35000/- रुपये का मुआवजा देने का निर्देश दिया गया था, लेकिन मुआवजे की कोई भी राशि पीड़ित के परिवार को लगातार पीड़ा से राहत नहीं दे सकती थी। प्रत्यर्थी संख्या 2 से 4 तक प्रत्येक को पांच वर्ष के कठोर कारावास का अधिरोपण आईपीसी की धारा 304 भाग-2 के तहत दोषसिद्धि के न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगी। [पैरा 12] [534-बी-ई]

केस कानून संदर्भ

(2004) 6 पूरक एस. सी. आर. 530 पर निर्भर पैरा 11

क्रिमिनल अपीलेट न्यायनिर्णयः आपराधिक अपील सं. 442/2015

उच्च न्यायालय, बॉम्बे, नागपुर पीठ की 1998 की आपराधिक अपील संख्या 284 में निर्णय और आदेश दिनांकित 14.07.2011 से।

के साथ

क्रिमिनल अपील नं. 443/2015 @ एसएलपी (क्रिमिनल) नं. 1505/2012

शंकर चिल्लारगे, ए. जी. ए., सत्यजीत ए. देसाई, सुश्री अनघा एस. देसाई, अनिरुद्ध पी. मयी, किशोर लांबाट, रबीन मजूमदार उपस्थित पक्षों के लिए।

न्यायालय द्वारा निर्णय गया।

<u>सी. नागप्पन, जे.</u>

1. दोनों अपीलों में अनुमति प्रदान की गई।

2. दोनों अपीलें 1998 की आपराधिक अपील संख्या 284 में बॉम्बे न्यायिक उच्च न्यायालय, नागपुर पीठ द्वारा पारित दिनांक 14.7.2011 के फैसले के खिलाफ दायर की गई हैं, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने उत्तरदाताओं 2 से 4 द्वारा दायर उक्त आपराधिक अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी थी। अभियुक्त संख्या 1 से 3 और इस तरह आईपीसी की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत उनकी दोषसिद्धि और सजा को रद्द कर दिया गया और इसके बजाय उन्हें आईपीसी की धारा 304 भाग-II सपठित धारा 34 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया और उन्हें पहले से ही भुगती गई अवधि के लिए कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से पीडब्लू1 नारायण पाटिल और मृतक के परिवार के सदस्यों को मुआवजे के रूप में 1,05,000/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया गया, भुगतान न करने की दशा में दो साल के लिए कठोर कारावास भुगतना होगा और उच्च न्यायालय ने आईपीसी की धारा

324 सपठित धारा 34 के तहत आरोपी व्यक्तियों की दोषसिद्धि को बरकरार रखा, लेकिन सजा को भुगती हुइ कारावास की सजा में परिवर्तित कर दिया। इससे व्यथित होकर राज्य ने 2015 की आपराधिक अपील संख्या 443 (@SLP (Crl.) 2012 की संख्या 1505) दायर की। शिकायतकर्ता तुकाराम ज्ञानेश्वर पाटिल ने भी 2015 की आपराधिक अपील संख्या 442 (@SLP(Crl.) 2012 की संख्या 1506 में अपील की है। चूंकि दोनों अपीलें एक ही फैसले के खिलाफ दायर की गई थी इसलिए उन्हें एक साथ सुना गया और एक ही निर्णय दिया गया।

3. संक्षेप में तथ्य इस प्रकार बताए गए हैं: आरोपी और मृतक ग्राम तुलजापुर तहसील वर्धा से संबंध रखते थे। पीडब्ल्यु 1 नारायण पाटिल मृतक ज्ञानेश्वर पाटिल का भाई था और वह भी उसी गाँव में रहता था। तुकाराम मृतक का पुत्र था। मृतक ज्ञानेश्वर पाटिल और आरोपी ए1-दीपक, ए2-प्रशांत और ए3-पवन के बीच खेत की सीमा को लेकर विवाद हुआ था और 22.10.1997 को आरोपी संख्या 1 ने ज्ञानेश्वर पाटिल के बाएं कान पर दरांती से हमला किया और ए2 और ए3 ने उसके सिर और मुंह पर लाठियों से हमला किया। जब पीडब्ल्यु 1 नारायण पाटिल ने हस्तक्षेप किया, तो आरोपी संख्या 1 से 3 ने उसकी बांह और सिर पर लाठियों से हमला किया। पीडब्ल्यु 2 से 4, पीडब्ल्यु 8 और पीडब्ल्यु 9 ने घटना देखी। घायलों को सेवाग्राम अस्पताल ले जाया गया।

4. पीडब्ल्यु 6 डॉ. राजेशकुमार ने जाँच की और ज्ञानेश्वर पाटिल के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

(I) नाक और बाएं कान से खून बहना।

(ii) बाएं कर्णमूल पर फटा हुआ घाव, 5 सेमी x 2 सेमी।

(iii) पिन्ना के मध्यवर्ती भाग पर क्षत-विक्षत घाव।

(iv) मेम्बिबल का फ्रैक्चर.

उसके द्वारा प्रदर्श. 64 चोट रिपोर्ट जारी की गई।

पीडब्ल्यु 6 डॉ. राजेशकुमार ने पीडब्लू1 नारायण पाटिल पर निम्नलिखित चोटें पाईं:

(I) पीठ के बायीं ओर 5 सेमी x 3 सेमी का घाव।

(ii) बायीं ऊपरी बांह पर घर्षण 7 सेमी x 5 सेमी।

(iii) दाहिनी ऊपरी बांह पर घर्षण 7 सेमी x 4 सेमी।

(iv) पीठ के दाहिनी ओर घर्षण 10 सेमी x 4 सेमी।

उनका मत था कि उपरोक्त सभी चोटें सामान्य प्रकृति की थीं और कुंद वस्तु से लगी थीं।

5. मेडिकल बूथ सेवाग्राम अस्पताल के हेड कांस्टेबल ने पीडब्ल्यु 1 नारायण पाटिल द्वारा दी गई शिकायत दर्ज की और उसे सिंदी पुलिस स्टेशन भेज दिया, जिस पर धारा 326 सपठित धारा 34 के तहत अपराध

संख्या 122/97 में मामला दर्ज किया गया और सिंदी पुलिस स्टेशन के पीडब्ल्यु 14 पीएसआई ने मामले को जांच के लिए लिया। इस बीच, दोनों घायलों को नागपुर मेडिकल कॉलेज अस्पताल में स्थानांतरित कर दिया गया। ज्ञानेश्वर पाटिल की 25.10.1997 को अस्पताल में मृत्यु हो गई और सूचना मिलने पर मामला आईपीसी की धारा 302 के तहत दर्ज कर दिया गया। मृत्यु जांच की गई और गवाहों से पूछताछ की गई।

6. पीडब्ल्यु 12 डॉ. प्रदीप जाधाओ और डॉ. वीआर अग्रवाल ने 26.10.1997 को नागपुर अस्पताल में ज्ञानेश्वर पाटिल के शरीर का पोस्टमार्टम किया और उन्हें बाएं टेम्पोरो पैरिटो ओसीसीपिटल क्षेत्र के ऊपर खोपड़ी के नीचे खोपड़ी और हेमेटोमा का फ्रैक्चर आधार मिला। यह राय दी गई कि मृत्यु पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उल्लिखित चोटों संख्या 3 और 4 के कारण हुई। जांच के बाद आरोप पत्र दाखिल किया गया और मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया। आरोपियों के खिलाफ धारा 302 सपठित धारा 34 और धारा 324 सपठित धारा 34 के तहत आरोप तय किए गए और उन्हें दोषी ठहराया गया और जैसा कि ऊपर कहा गया है, सजा सुनाई गई। उसी आरोपी नंबर 1 से 3 को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय ने अपील की और ऊपर बताए अनुसार दोषसिद्धि और सजा को बदल दिया। इससे व्यथित होकर, राज्य के साथ-साथ शिकायतकर्ता ने भी वर्तमान अपील को दायर की।

7. हमने दोनों अपीलों में अपीलकर्ता के विद्वान वकील और प्रत्यर्थी के विद्वान वकील को सुना। प्रत्यक्षदर्शी गवाह पीडब्ल्यु 1 से 4, पीडब्ल्यु 8 और पीडब्ल्यु 9 ने घटना के समय ज्ञानेश्वर पाटिल पर प्रत्यर्थी 2 से 4/अभियुक्त संख्या 1 से 3 द्वारा किए गए हमले के बारे में गवाही दी है। उनकी गवाही पर भरोसा करते हुए विचारणीयअदालतों ने सही निष्कर्ष निकाला कि घटना साबित हुई है।

8. घटना के बाद ज्ञानेश्वर पाटिल को सेवाग्राम अस्पताल ले जाया गया और पीडब्ल्यु 6 डॉ. राजेशकुमार ने उनकी जांच की और बाएं मास्टॉयड, पिन्ना के मध्य भाग पर कटे हुए घाव पाए और निचले जबड़े में फ्रैक्चर देखा। उन्हें नागपुर मेडिकल कॉलेज अस्पताल में स्थानांतरित कर दिया गया जहां उनकी मृत्यु हो गई। पीडब्ल्यु 12 डॉ. प्रदीप जाधाओ ने एक अन्य सर्जन के साथ मिलकर उसके शरीर का शव परीक्षण किया और उन्हें खोपड़ी का फ्रैक्चर और बाएं टेम्पोरो पेरिटो ओसीसीपिटल क्षेत्र के ऊपर खोपड़ी के नीचे हेमेटोमा मौजूद मिला। उन्होंने राय व्यक्त की है कि मौत बायें मास्टॉयड क्षेत्र और बायें पिन्ना के ऊपर मिली चोटों के कारण हुई है। पीडब्ल्यु 12 डॉ. प्रदीप जाधाओ ने मुख्य-परीक्षण में यह भी कहा है कि उक्त चोटें प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त हैं। चिकित्सीय साक्ष्यों को स्वीकार करने पर यह स्पष्ट है कि ज्ञानेश्वर पाटिल की मृत्यु नरसंहार से हुई।

9. सबूतों का विश्लेषण करने के बाद उच्च न्यायालय ने माना कि झगड़ा था जिसके कारण यह घटना हुई और आरोपियों को चोटें भी आईं और उन्हें हत्या के अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता और चूंकि उन्हें पता था कि उनके कृत्य से मौत होने की संभावना है, इसलिए उन्होंने धारा 304 भाग-II आईपीसी के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। हमें उच्च न्यायालय के उक्त निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं दिखती।

10. परेशान करने वाली बात आईपीसी की धारा 304 भाग-2 के तहत दोषसिद्धि के लिए प्रत्यर्थी 2 से 4 को उच्च न्यायालय द्वारा दी गई सजा है। जैसा कि आक्षेपित निर्णय में उल्लेख किया गया है, प्रत्यर्थी 2 से 4/अभियुक्त संख्या 1 से 3 को 29.10.1997 को गिरफ्तार किया गया था और उन्हें 28.9.1998 को जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया गया था और उन्होंने केवल ग्यारह महीने की कैद काटी है। उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि को आईपीसी की धारा 304 भाग-2 में परिवर्तित करते हुए, सजा को पहले से बिताई गई अवधि के लिए कारावास में बदल दिया और प्रत्येक शिकायतकर्ता को 35000/- रुपये की राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया। राज्य और शिकायतकर्ता दोनों ने सजा के इस बदलाव को चुनौती दी है।

11. अपराध के मामलों में सजा सुनाना एक महत्वपूर्ण कार्य है। आपराधिक कानून का एक प्रमुख उद्देश्य अपराध की प्रकृति और गंभीरता तथा अपराध करने के तरीके के अनुरूप उचित, पर्याप्त, न्यायसंगत और आनुपातिक सजा देना है। अदालतों द्वारा सजा सुनाए जाने के संदर्भ में, इस न्यायालय ने **यूपी राज्य बनाम श्री किशन** (2005) 10 एससीसी 420 के फैसले में ये महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ कीं:

> "5. अपर्याप्त सजा देने के लिए अनुचित सहानुभूति न्याय प्रणाली को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी। कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी और समाज ऐसे गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है। इसलिए, प्रत्येक अदालत का कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से इसे निष्पादित किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे।......... आदि।"

7. उद्देश्य समाज की रक्षा करना और अपराधी को उचित सजा देकर कानून के स्वीकृत उद्देश्य को प्राप्त करने से रोकना होना चाहिए। यह अपेक्षा की जाती है कि अदालतें सजा प्रणाली का संचालन करेंगी ताकि ऐसी सजा दी जा सके जो समाज की अंतरात्मा को प्रतिबिंबित करे और सजा प्रक्रिया को जहां सख्त होना चाहिए वहां होना चाहिए।

8................. ऐसे अपराधों के संबंध में कम सजाएं लगाने या केवल समय व्यतीत होने के कारण बहुत अधिक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने का कोई भी उदार रवैया लंबे समय में परिणामहीन होगा। यह सामाजिक हित के विरुद्ध होगा जिस पर ध्यान देने की जरूरत है। सजा प्रणाली में अंतर्निहित प्रतिरोध की श्रृंखला द्वारा मजबूत किया गया।

9. यदि उस अपराध के लिए उचित दंड नहीं दिया गया जो न केवल व्यक्तिगत पीड़ित के खिलाफ बल्कि उस समाज के खिलाफ भी किया गया है जिससे अपराधी और पीड़ित है, तो अदालत अपने कर्तव्य में असफल होगी। किसी अपराध के लिए दी जाने वाली सज़ा अप्रासंगिक नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह उस अत्याचार और क्रूरता के अनुरूप होनी चाहिए जिसके साथ अपराध किया गया है, अपराध की विशालता सार्वजनिक घृणा की गारंटी देती है और इसे "अपराधी के खिलाफ न्याय के लिए समाज की पुकार का जवाब देना चाहिए"।

12. मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ जो अभियोजन पक्ष द्वारा आईपीसी की धारा 304 भाग- II के तहत आरोपी के अपराध को साबित करने में साबित हुई हैं, निस्संदेह एक घृणित गंभीर अपराध को दर्शाती हैं, जिसके लिए अपराध के अनुपात में सजा की आवश्यकता है। उक्त दोषसिद्धि के लिए उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी को दी गई ग्यारह महीने की सजा बहुत कम और पर्याप्त नहीं है और हमारे विचार में यह न्याय का मखौल

होगा। यह सच है कि प्रत्येक अपीलकर्ता को 35000/- रुपये का मुआवजा देने का निर्देश दिया गया था, लेकिन मुआवजे की कोई भी राशि पीड़ित के परिवार को लगातार पीड़ा से राहत नहीं दे सकती थी। हमारा मानना है कि आईपीसी की धारा 304 भाग-2 के तहत दोषसिद्धि के लिए प्रत्येक प्रतिवादी संख्या 2 से 4 पर पांच साल का कठोर कारावास लगाने से न्याय की पूर्ति होगी। हम उक्त प्रत्यर्थी पर लगाई गई अन्य दोषसिद्धि और सजा को बरकरार रखते हैं।

13. परिणामस्वरूप परिणाम में दोनों आपराधिक अपीलें आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं और आईपीसी की धारा 304 भाग-2 के तहत दोषसिद्धि के लिए पहले से ही भुगती गई अवधि के लिए कारावास की सजा को रद्द कर दिया जाता है और इसके स्थान पर प्रतिवादी 2 से 4/अभियुक्त संख्या 1 से 3 को दोषी ठहराए जाते हैं। प्रत्येक को पांच साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। उच्च न्यायालय द्वारा उन पर लगाई गई अन्य सभी दोषसिद्धि और सजा बरकरार रखी गई है। उन्हें शेष सजा काटने के लिए द्वितीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, वर्धा के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है, ऐसा न करने पर द्वितीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश से उन्हें हिरासत में लेने और उनकी शेष सजा काटने के लिए जेल भेजने का अनुरोध किया जाता है।

अपीलों का निपटारा किया गया।

[2015] 3 एस. सी. आर 535

सुजीतेंद्रनाथ सिंह रॉय

बनाम

पश्चिम बंगाल एवं अन्य राज्य।

सिविल अपील संख्या 7535/2011

13 मार्च, 2015

[विक्रमजीत सेन और शिवा कीर्ति सिंह, जे. जे.]

पश्चिम बंगाल भूमि सुधार और किरायेदारी न्यायाधिकरण अधिनियम, 1997: धारा 15- पश्चिम बंगाल भूमि सुधार और किरायेदारी न्यायाधिकरण के एक प्राधिकरण के खिलाफ अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार कर देने के आदेश के खिलाफ रिट याचिका दायर की गई। उच्च न्यायालय ने यह माना कि रिट याचिका संधारण योग्य नहीं है। उच्च न्यायालय की संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति को न ही किसी विधि द्वारा और न ही किसी संवैधानिक संशोधन से हटाया जा सकता है। इसलिए, यह एक दुर्लभ मामला होगा जहाँ उच्च न्यायालय यह माने कि अवर अदालत या न्यायाधिकरण किसी भी आदेश के विरुद्ध रिट याचिका दायर नहीं की जा सकती है- बनाए रखने योग्य नहीं होगा-

हालांकि, उच्च न्यायालय के लिए हमेशा यह विकल्प उपलब्ध है कि उपयुक्त मामलों में, उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित कर सकता है कि एक रिट याचिका औचित्य, संवैधानिक योजना, आत्म-संयम के कुछ निर्धारित नियमों या इसके विशिष्ट तथ्यों के कारण विचार करने योग्य नहीं है। मामला उच्च को रिट याचिका पर उसके गुणावगुण पर और विधि के अनुसार नए सिरे से विचार करने के लिए वापस भेज दिया गया। अदालतों की अवमानना अधिनियम, 1971-धारा -19 –भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 226,227.

अपील को अनुमति देते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया किः

1. पश्चिम बंगाल भूमि सुधार और किरायेदारी न्यायाधिकरण अधिनियम, 1997 की धारा 15 के तहत न्यायाधिकरण को अपनी अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति प्रदान की गई है, जैसा कि न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 के प्रावधानों के तहत उच्च न्यायालय में निहित है। अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत उच्चतम न्यायालय के समक्ष केवल उच्च न्यायालय के ऐसे आदेश के खिलाफ अपील की जा सकती है जो अवमानना के लिए सजा देता है और अंतरिम आदेश या अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने या ड्रॉप के आदेश के खिलाफ अपील नहीं होगी। [पैरा 4 और 5] [538-एफ-जी; 539-डी]

2. यह कहना अनुचित होगा कि जब न्यायधिकरण अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इंकार कर देता है तब संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। यह दलील कि 1997 के अधिनियम की धारा 15 के तहत ट्रिब्यूनल में निहित अवमानना की समान शक्तियों के कारण, ट्रिब्यूनल रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए उच्च न्यायालय से कमतर नहीं रह जाता है, इसमें कोई सार नहीं है क्योंकि यह इस बात को नजरअंदाज करता है कि उच्च न्यायालय संवैधानिक स्थिति और असाधारण रिट क्षेत्राधिकार के साथ निहित हैं जबकि न्यायधिकरण केवल विधि द्वारा निर्मितहै। संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति को किसी कानून या संवैधानिक संशोधन द्वारा भी छीना नहीं जा सकता है। मामले को अपीलकर्ता की रिट याचिका पर उसके गुण-दोष के आधार पर और कानून के अनुसार विचार करने के लिए वापस उच्च न्यायालय में भेज दिया जाता है। [पैरा सं. 8 से 10 [540-ई-एफ; 541-ए-बी, डी और एफ-जी]

मंजू बनर्जी बनाम देबब्रत पाल **2006 (1) डब्ल्यू. बी. एल. आर. (कैल) 147 -अस्वीकृत।**

एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ **(1997) 3 एससीसी 261: 1997 (2) एस. सी. आर. 1186-पर निर्भर।**

महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस. अल्लीभॉय **(1996) 4 एससीसी 411: 1996 (1) पूरक। एस. सी. आर. 166;** मेदिनीपुर पीपुल्स कॉप बैंक लिमिटेड बनाम चुनिलाल नंदा **(2006) 5 एससीसी 399: 2006 (2) पूरक। एस. सी. आर. 986-संदर्भित।**

मामला कानून संदर्भ

2006 (1) डब्ल्यू. बी.एल.आर. (कैल) 147, अस्वीकृत, पैरा 1

1997 (2) एससीआर 1186, पर भरोसा किया, पैरा 3

1996 (1) पूरक एससीआर 166, संदर्भित किया गया, पैरा 5

2006 (2) पूरक एससीआर 986, संदर्भित किया गया, पैरा 5

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 7535/2011

कलकत्ता उच्च न्यायालय के 2009 की डब्ल्यू.पी.एल.आर.टी. सं. 54 में निर्णय आदेश दिनांकित 20.03.2009 से।

भास्कर गुप्ता, आर के गुप्ता, एस के गुप्ता, एम के सिंह, बी. पी. गुप्ता, शेखर कुमार अपीलार्थी की ओर से।

अनीप सचथे, साकार सरदाना प्रत्यर्थी के लिए।

न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाया गया।

शिवा कीर्ति सिंह, जे.

1. दोनों पक्षों के विद्वान वकील को सुना। यह अपील 2009 के डब्ल्यूपीएलआरटी नंबर 54 में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा 20 मार्च 2009 के आदेश को चुनौती देने के लिए दायर की गई है। उच्च न्यायालय ने मंजू बनर्जी बनाम देबब्रत पाल (2006) 1 डब्लूबीएलआर (कैल) 147 के मामले में उसी न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया है और अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई रिट याचिका को सुनवाई योग्य नहीं माना।

2. इस अपील में उठाया गया मुद्दा यह है कि क्या पश्चिम बंगाल भूमि सुधार और किरायेदारी न्यायाधिकरण ('न्यायाधिकरण') के एक आदेश के खिलाफ एक रिट आवेदन विचारणीय है, जिसमें न्यायाधिकरण के समक्ष प्रतिवादी संख्या 5 के रूप में प्रस्तुत प्राधिकारी के खिलाफ अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार कर दिया गया है। कानून के ऐसे मौलिक प्रश्न के लिए उन तथ्यों के संदर्भ की आवश्यकता नहीं है, जिसके कारण अपीलकर्ता को अदालत की अवमानना अधिनियम, 1971 के तहत कार्यवाही शुरू करने की प्रार्थना के साथ ट्रिब्यूनल के समक्ष 2008 के MA No.24 के अनुरूप 2007 का OA No.2744 दायर करना पड़ा।

3. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने मंजू बनर्जी (पूर्व में वर्णित) के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले को हमारे सामने प्रस्तुत किया है और यह दलील दी है कि उसमें लिया गया यह

विचार कि अवमानना कार्यवाही को खारिज करने के खिलाफ अपील का कोई अधिकार नहीं है, सही है और किसी चर्चा की आवश्यकता नहीं है, लेकिन आगे का दृष्टिकोण यह है कि स्पष्ट अवमानना के गंभीर मामलों में भी अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने से पीड़ित इत्तला देने वाला व्यक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत केवल सर्वोच्च न्यायालय का रुख कर सकता है, इस आधार पर उस पर आघात किया गया है कि इस तरह की टिप्पणी एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ (1997) 3 एससीसी 261 के निर्णय के मामले में सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ के फैसले में प्रासंगिक तथ्यों की के विश्लेषण नहीं होने के कारण हैं।

4. अपीलकर्ता की ओर से, यह आगे कहा गया था कि एल. चंद्र कुमार (पूर्व में वर्णित) के मामले में फैसला 18 मार्च 1997 को दिया गया था। प्रासंगिक अधिनियम, अर्थात् पश्चिम बंगाल भूमि सुधार और किरायेदारी न्यायाधिकरण अधिनियम, 1997 (संक्षिप्तता के लिए '1997 का अधिनियम'के रूप में जाना जाता है) भारत के संविधान के अनुच्छेद 323 बी के तहत सक्षम प्रावधानों के संदर्भ में बाद में अधिनियमित किया गया था। 1997 के अधिनियम की धारा 15 के तहत न्यायाधिकरण को अपनी अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति प्रदान की गई है, जैसा कि न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 के प्रावधानों के

तहत उच्च न्यायालय में निहित है। सुविधा के लिए, धारा 15 यहां नीचे दी गई है: "15. न्यायाधिकरण की अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति- ट्रिब्यूनल के पास न्यायाधिकरण की अवमानना के संबंध में वही अधिकार क्षेत्र, शक्ति और प्राधिकार होगा, जो उच्च न्यायालय के पास है और वह प्रयोग कर सकता है, और, इस उद्देश्य के लिए, न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 के प्रावधान, इन संशोधनों के अधीन प्रभावी होंगे-

{क} उसमें उच्च न्यायालय के संदर्भ को ट्रिब्यूनल के संदर्भ के रूप में माना

जाएगा, और

{ख} उक्त अधिनियम की धारा 15 में महाधिवक्ता के संदर्भ को राज्य के

महाधिवक्ता के संदर्भ के रूप में माना जाएगा।"

5. कानून के इस प्रस्ताव में कोई चेतावनी नहीं है कि न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 के तहत उच्चतम न्यायालय के समक्ष केवल उच्च न्यायालय के ऐसे आदेश के खिलाफ अपील की जा सकती है जो अवमानना के लिए सजा देता है और अंतरिम आदेश या अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने या छोड़ने का आदेश के

खिलाफ कोई अपील नहीं होगी। यह **महाराष्ट्र राज्य बनाम महबूब एस. अलीभोय** (1996) 411 एससीसी के मामले में स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था।**मिदनापुर पीपल्स कॉप बैंक लिमिटेड बनाम चुन्नीलाल नंदा** (2006) 5 एससीसी 399 के मामले सहित कई मामलों में भी इस दृष्टिकोण का पालन किया गया ।

6. **एल चंद्र कुमार** (पूर्व में वर्णित) के मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 323ए और 323बी में कुछ खंडों को इस हद तक असंवैधानिक घोषित किया है जिस हद तक वे उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 के अंतर्गत वर्जित करते हैं। यह इस आधार पर था कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान की एक बुनियादी और मूलभूत विशेषता है और इसलिए, संवैधानिक संशोधन द्वारा भी इसे छीना नहीं जा सकता है। इस निर्णय के पैराग्राफ 91, 92 और 93 को अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने अपनी दलील के समर्थन में उजागर किया था कि संविधान के अनुच्छेद 323ए या अनुच्छेद 323बी के अनुसार पारित किए गए न्यायाधिकरणों के सभी निर्णयों को उच्च न्यायालयों के रिट के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के क्षेत्राधिकार के अधीन माना गया है।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान वकील ने **महबूब एस. अल्लीभॉय** (पूर्व में वर्णित) के मामले में पैराग्राफ 4 पर भरोसा किया, जिसमें यह

स्पष्ट किया गया था कि अवमानना के लिए कार्यवाही छोड़ने या अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने वाले आदेश के खिलाफ अदालत की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 19 के अनुसार कोई अपील नहीं की जा सकती है। यह भी प्रस्तुत किया गया था कि चूंकि 1997 के अधिनियम की धारा 15 के तहत न्यायाधिकरण को अवमानना के प्रावधानों के तहत अवमानना के संबंध में उच्च न्यायालय के समान अधिकार क्षेत्र, शक्ति और प्राधिकार प्राप्त है इसीलिए, उच्च न्यायालय न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है जब न्यायाधिकरण अवमानना याचिका को अस्वीकार करने या छोड़ने के लिए उच्च न्यायालय के समान शक्तियों का प्रयोग करता है।

8. मंजू बनर्जी (पूर्व में वर्णित) के मामले में डिवीजन बेंच के फैसले पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर, जिसका आक्षेपित आदेश में पालन किया गया है, हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकते हैं कि जब न्यायाधिकरण अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इंकार कर देता है तब संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। इस तरह का निष्कर्ष डिवीजन बेंच द्वारा इस न्यायालय के कुछ निर्णयों के आधार पर निकाला गया है जैसे कि**डीएन तनेजा बनाम भजन लाल** (1988) 3 एससीसी 26 के मामले में। उन मामलों में कार्यवाही शुरू करने से इनकार करने का आदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया था और किसी न्यायाधिकरण द्वारा नहीं। इसीलिए यह न्यायालय यह पाता है

कि एक उपयुक्त और उचित मामले में पीड़ित व्यक्ति जिसने अदालत को अवमानना के कथित कृत्य के बारे में सूचित किया, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। जाहिर तौर पर उन मामलों में पीड़ित व्यक्ति अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा भी खटखटा सकता है। यह दलील कि 1997 के अधिनियम की धारा 15 के तहत न्यायाधिकरण में निहित अवमानना की समान शक्तियों के कारण, न्यायाधिकरण रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए उच्च न्यायालय से कमतर नहीं रह जाता है, इसमें कोई सार नहीं है क्योंकि यह इस बात को नजरअंदाज करता है कि उच्च न्यायालय संवैधानिक स्थिति और असाधारण रिट क्षेत्राधिकार के साथ निहित हैं जबकि न्यायाधिकरण केवल विधि द्वारा निर्मित है। इसलिए, हमारे विचार में, **मंजू बंनर्जी** (पूर्व में वर्णित) के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने सही ढंग से विधि का विवेचन नहीं किया है कि जब न्यायाधिकरण अवमानना कार्यवाही शुरू करने से इंकार कर देता है, तो पीड़ित व्यक्ति के पास केवल अनुच्छेद 136 के तहत उपचार होता है और संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत नहीं।

9. जैसा कि **एल. चंद्र कुमार** (पूर्व में वर्णित) के मामले में संविधान पीठ ने कहा था, संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति को किसी कानून या संवैधानिक संशोधन द्वारा भी छीना नहीं जा सकता है। इसलिए, यह वास्तव में एक दुर्लभ

मामला होगा जहां उच्च न्यायालय यह मान सकता है कि अवर न्यायालय या न्यायाधिकरण के किसी भी आदेश के खिलाफ रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं है। हालाँकि, हमें यह अतिरिक्त रूप से जोड़ने में कोइ आपत्ति नहीं है कि उचित मामलों में, उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित कर सकता है कि एक रिट याचिका औचित्य, संवैधानिक योजना, आत्म-संयम के कुछ निर्धारित नियमों या इसके विशिष्ट तथ्यों के कारण विचार करने योग्य नहीं है।

10. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, विवादित आदेश को रद्द कर दिया जाता है और मामले को अपीलकर्ता की रिट याचिका पर उसके गुण-दोष के आधार पर और कानून के अनुसार विचार करने के लिए वापस उच्च न्यायालय में भेज दिया जाता है। हम यह स्पष्ट कर देते हैं कि हमने मामले के गुणावगुण का विवेचन नहीं किया है। उपरोक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है। कोई लागत अधिरोपित नहीं की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी दीपिका रामावत (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।